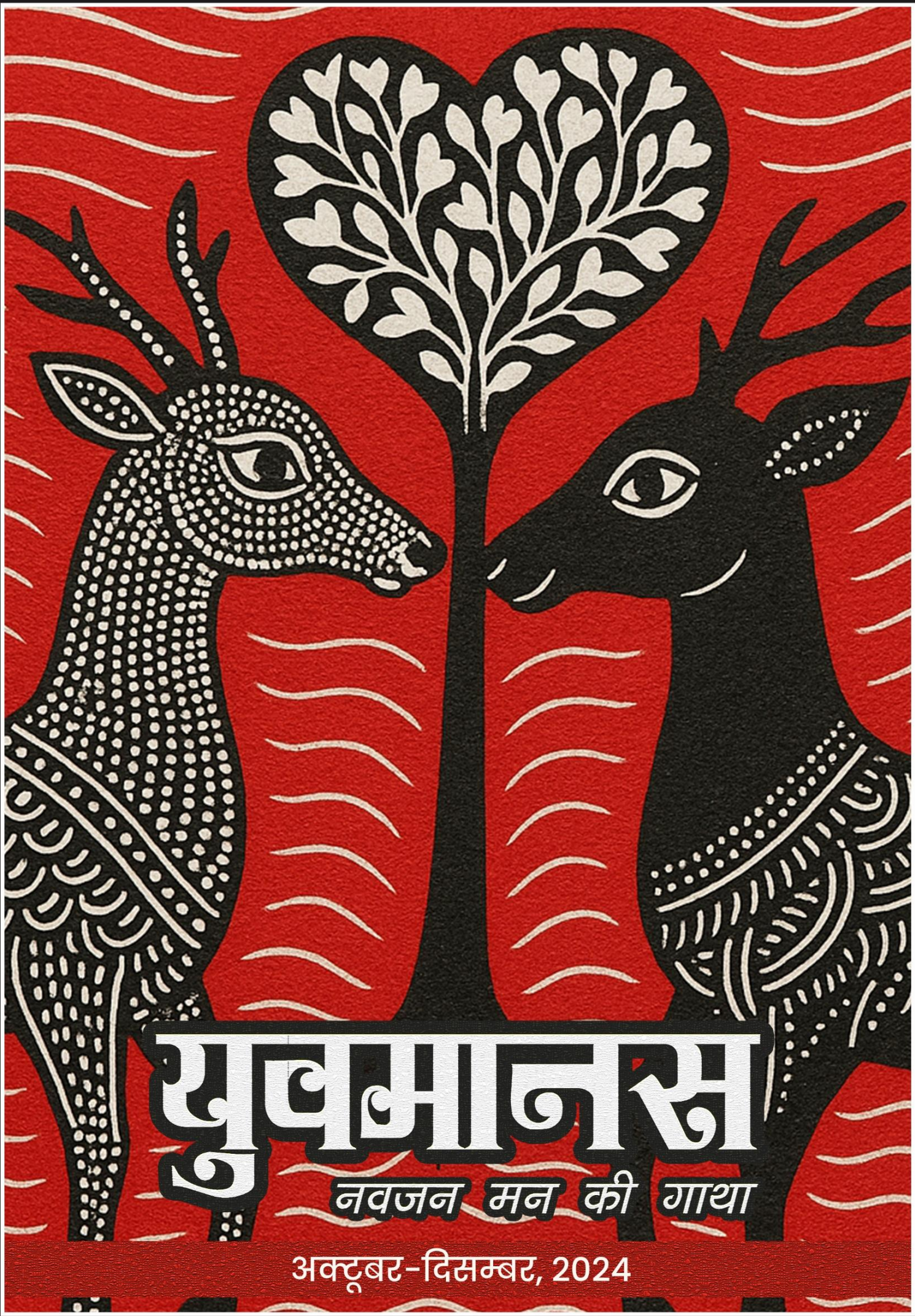

युवमानस

नवजन मन की गाथा

अक्टूबर-दिसम्बर, 2024

युवमानस

नवजन मन की गाथा

अक्टूबर – दिसंबर, 2025

संकल्पना

डॉ० प्रियंका सिंह

संपादक

संजय सोलोमन

उप-संपादक

तृप्ति रानी बेड़ा

पृष्ठ सज्जा

रिमी कुमारी, परिधि कुमारी, संतोषी कुमारी, संगीता महतो, अकांक्षा कुमारी, कविता महतो, सावित्री बिरुली, रातरानी, सीमा एवं अन्य

हिन्दी विभाग

जमशेदपुर को-ऑपरेटिव कॉलेज

के छात्र समूह की त्रैमासिक दीवार पत्रिका की डिजिटल प्रति

विषय सूची

संपादकीय _____ 03

कभी सोचा है? _____ 05

प्रीत का गीत _____ 06

मोहब्बत का रिश्ता _____ 07

अंतिम मिलन _____ 08

तुलसी के राम _____ 09

याद आती हो तुम _____ 10

हर दिन एक नई चुनौती _____ 11

अदृश्य तपस्या _____ 12

“

खुसरो दरिया प्रेम का, उल्टी वा की धार।
जो उतरा सो डूब गया, जो डूबा सो पार॥

- अमीर ख़ुसरो

संपादकीय

"एकै आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय"

प्रिय पाठकों,

प्रेम केवल ढाई अक्षरों का एक शब्द नहीं है, बल्कि एक ऐसी अनुभूति है जो व्यक्ति को समस्त संसार से जोड़े रखती है। प्रेम व्यक्ति को बांधता नहीं है, बल्कि स्वतंत्र करता है। यह किसी भी प्रकार के भेद को अस्वीकार करता है। प्रेम मनुष्य को वह दृष्टि देता है, जिससे वह अन्य मनुष्यों को भी अपने समरूप मनुष्य समझता है; सुख-दुख में उनके साथ सहानुभूति रखता है और उनके दर्द को महसूस करता है। प्रेम सही अर्थों में मनुष्य को मनुष्य बनाता है।

साथियों, प्रेम इस सृष्टि में आरंभ से ही व्याप्त है। माँ का अपने बच्चे के साथ जुड़ाव, किसी जीव की मृत्यु पर अन्य का शोक जैसे भाव जीवों में आरंभ से ही मौजूद थे। आदिम मनुष्य अपनी चेतना के विकास के साथ, प्रेम की व्यापकता को समझने लगा था। किन्तु निजी संपत्ति के उदय के साथ मनुष्यों में लालच, हवस, द्वेष जैसी प्रेम से विपरीत प्रवृत्तियाँ हावी होने लगी। वह अपनी विकसित चेतना का प्रयोग उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण करने के लिए करने लगा। उसने अन्य मनुष्यों को गुलाम बनाया। स्त्रियों पर विभिन्न प्रतिबंध लगा कर उन्हें घर तक सीमित कर दिया। इस तरह एक असंतुलित पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था अस्तित्व में आई। इस शोषण व्यवस्था के लिए प्रेम एक खतरा था क्योंकि प्रेम स्वतंत्रता और समानता की स्थापना करता है। यही कारण है कि विवाह जैसे सामाजिक संस्था के साथ प्रेम की संकुचित अवधारणा बना कर उन्मुक्त और व्यापक प्रेम पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

यदि हम इतिहास के पन्नों को पलटें तो पाएंगे कि समस्त विश्व में प्रेम करने वालों को अपराधी के रूप में देखा जाता रहा है। प्रेम करने पर सामाजिक बहिष्कृति से लेकर मृत्यु दंड तक सजाएँ दी जाती रही है। पूरा प्रयास किया गया है कि सम्पन्न वर्ग द्वारा निजी लाभ हेतु बनाई गई जाति, धर्म, लिंग, वर्ण आदि की रेखाएँ प्रेम के प्रभाव से मिट न जाए। किन्तु ग़ालिब ने कहा है, "इश्क़ पर ज़ोर नहीं है ये वो आतिश 'ग़ालिब' / कि लगाए न लगे और बुझाए न बने।" समाज ने प्रेम पर भले कितने ही प्रतिबंध लगाए हो, पर जब सच्चे प्रेम की अनुभूति किसी को होती है तो वह सारे बंधनों को तोड़ देता है। चाहे यूरोप में रोमियो जूलियट की कहानी हो, अरब में लैला मजनूँ का क़िस्सा हो या पंजाब में हीर राँझे की दास्तान, ऐसी अनेक लोककथाएँ मिल जाएंगी जिनमें वर्णन है कि कैसे समाज के अत्याचार के बावजूद प्रेम करने वाले प्रेम कर जाते हैं।

सूफियों के साथ प्रेम का एक उन्मुक्त और व्यापक रूप अध्यात्म के क्षेत्र में आया, जिसने समाज को भी खूब प्रभावित किया। सूफ़ी स्वयं को यानी आत्मा को प्रेमी और परमात्मा को प्रेमिका मान कर प्रेम भाव की भक्ति करते हैं। उनके अनुसार अलौकिक प्रेम तक पहुँचने से पहले लौकिक प्रेम से गुजरना पड़ता है। यही कारण है कि सूफियों ने धर्म, जाति, लिंग आदि बंधनों से परे जा कर प्रेम का प्रचार किया। औरंगज़ेब ने अपने भाई दाराशिकोह की इसलिए भी हत्या कर दी थी क्योंकि वह सूफ़ी था जो सांकेतिक रूप से एक हाथ में गीता और दूसरे में क़ुरान ले कर प्रेम का प्रचार करता था। मीरा ने भी कृष्ण को प्रियतम मान कर प्रेम भाव की भक्ति को अपनाया था जो तत्कालीन सामंती समाज को स्वीकार न था। उन्हें भी सभी तरह की प्रताड़ना दी गई और विष देकर मारने का भी प्रयास किया गया। किन्तु सच्चा प्रेम स्वयं को सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त कर लेता है चाहे उसकी परिणति कुछ भी हो।

जिगर मोरादाबादी प्रेम के विषय में कहते हैं, "इक लफ़्ज़-ए-मोहब्बत का अदना ये फ़साना है / सिमटे तो दिल-ए-आशिक़ फैले तो ज़माना है।" प्रेम का विस्तार बहुत व्यापक है। यह मनुष्य को केवल अन्य मनुष्यों से नहीं अपितु संपूर्ण सृष्टि से जोड़ता है। प्रेम ही तो है जो आदिवासियों को जल, जंगल और ज़मीन से जोड़े रखता है। सामंती समाज ने प्रेम की उन्मुक्तता के साथ इसकी व्यापकता पर भी प्रहार किया। उसे काम वासना से जोड़ कर कुछ निश्चित संबंधों तक ही सीमित कर दिया। प्रेम के स्वतंत्र और व्यापक रूप को तोड़ कर तथा अन्य भावों से जोड़ कर काम युक्त प्रेम को रति, ममता युक्त प्रेम को वात्सल्य जैसे भावों में बाँट दिया। समस्त सृष्टि तो क्या, मनुष्य का मनुष्य से भी प्रेम नहीं रहा। इससे सामंती व्यवस्था को बल मिला। प्रेम के अभाव में जाति, धर्म, लिंग आदि की खाई गहरी होती गई और सर्वहारा वर्ग उन्हीं में उलझ कर शोषित होता रहा।

आज भी जब पूंजीवादी व्यवस्था के दौर में शोषण और नियंत्रण के लिए व्यक्ति को समाज से अलग किया जा रहा है। वर्ग संघर्ष के स्थान लोग व्यक्तिगत संघर्ष के लिए विवश हो रहे हैं। मनुष्य का समाज से सरोकार ख़त्म करने के लिए उन्हें बाँटने का हर संभव प्रयास किया जा रहा है। तब प्रेम की आवश्यकता और अधिक महसूस हो रही है। प्रेम के अभाव में आज समाज बर्बरीयत के चरम पर है। गृह और अंतरदेशीय युद्धों में लाखों मासूम लोग जान गँवा रहे हैं। सांप्रदायिक और समुदायिक दंगें, निर्मम हत्याएं, बलात्कार आदि प्रतिदिन की ख़बरे हैं। समाज को इस अराजकता से निकालने के लिए प्रेम के प्रचार-प्रसार की शीघ्र आवश्यकता है, जैसा कि बशीर बद्र ने कहा है, "सात संदूक़ों में भर कर दफ़्न कर दो नफ़रतें / आज इंसाँ को मोहब्बत की ज़रूरत है बहुत।" आज प्रेम केवल एक भाव या अनुभूति भर नहीं है बल्कि एक सशक्त विद्रोह है। इसलिए आवश्यक है कि हम समाज द्वारा बनाए गए धर्म, जाति, लिंग समेत सभी प्रकार के खाँचो से प्रेम को मुक्त करें ताकि सभी, सभी से प्रेम कर सकें। अंततः कबीर के शब्दों में आपसे यही कहना चाहता हूँ कि,

"पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोय।
एकै आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय॥"

– संजय सोलोमन
(स्नातकोत्तर, सेमेस्टर 2)

"चाहे गीता बांचिये, या पढ़िये कुरआन।
मेरा तेरा प्यार ही हर पुस्तक का ज्ञान॥"

- निदा फ़ाज़ली

कभी सोचा है?

कभी सोचा है...
अगर ये दिल सिर्फ़ धड़कता रहे,
मगर किसी के नाम पर न धड़के...
तो क्या होगा?

अगर आंखों में कोई ख्वाब न हो,
सिर्फ़ नींद हो...
तो क्या होगा?

अगर लबों पे कोई सदा न हो,
सिर्फ़ खामोशी हो...
तो क्या होगा?

ज़िन्दगी यूँ तो चलती रहेगी,
रोज़ की तरह—
सुबह होगी, शाम ढलेगी,
काग़ज़ के फूल खिलेगें...
मगर खुशबू कहाँ से आएगी?

प्रेम कोई दिखावा नहीं,
न ही कोई दस्तूर है,
ये तो वो आहट है,
जो हमारे वजूद को भीतर से जगा देता है।

जिस घर में प्रेम न हो,
वो बस ईंट-पत्थर का एक मकान है...
जिस दिल में प्रेम न हो,
वो सिर्फ़ एक धड़कता हुआ पत्थर है।

तो पूछती हूँ...
अगर ज़िन्दगी में प्रेम न हो—
तो फिर,
ज़िन्दगी में बाकी क्या रह जाता है?

परिधि कुमारी
(स्नातकोत्तर, सेमेस्टर 2)

प्रीत का गीत

दर्द किसी के टूटे दिल का, भरा हो जब सीने में।
बीत रहा हो जब दिन सारा, बस आंसू पीने में।
अश्क छुपाकर यूं ही क्या, कोई मुस्का सकता है?
प्रीत का गीत कोई ऐसे में, कैसे गा सकता है?

कैसे शब्द चुनेगा कोई, कैसे बुनेगा गीत?
लय और ताल छूट जाते हैं, कैसे हो संगीत?
टूटे दिल को कोई भला, कैसे समझा सकता है?
प्रीत का गीत कोई ऐसे में, कैसे गा सकता है?

सारा मन जब सूख चुका हो, अश्क भी आएं कैसे?
बुझे हुए मन से तब कोई, राग सुनाए कैसे?
थके-थके कदमों से कोई, मंजिल पा सकता है?
प्रीत का गीत कोई ऐसे में, कैसे गा सकता है?

विरह ही होता है ठिकाना, क्यों हर प्रेम डगर का?
मीत बिना कोई कैसे काटे, रस्ता जीवन भर का?
गुज़रे हुए सुनहरे दिन, क्या कोई ला सकता है?
प्रीत का गीत कोई ऐसे में, कैसे गा सकता है?

जग की है यह रीत, प्रीत को लिए चलो जीवन में।
जैसे मीरा हुई दीवानी रख कर कृष्ण को मन में।
क्या अब कोई विष पी कर भी प्रीत निभा सकता है?
प्रीत का गीत कोई ऐसे में, कैसे गा सकता है?

संतोषी कुमारी
(स्नातकोत्तर, सेमेस्टर 2)

मोहब्बत का रिश्ता

पराया कर दिया मुझको उसी ने ही सरे-महफ़िल
वो जो हर बात पर करता था दावा अपना होने का
किया मशहूर मुझको बेवफ़ा के नाम से जग में
जहाँ था ज़िक्र हरसू बावफ़ा के नाम से मेरा

सितम ये है कि मेरे क़त्ल पे भी आज ख़ुश है वो
जो मेरी ख़ामोशी से भी सदा बेचैन होता था।
तरस जाती हूँ उनसे आज अपना नाम सुनने को,
लबों पर जिसके हरदम बस मेरा ही नाम होता था।

कसूर उसका नहीं है कुछ भी मेरा दिल ही नादाँ था
उम्मीद उससे ज़रूरत से ज़ियादा कर रही थी मैं।
उसी ने तोड़ डाले आज सारे ख़्वाबों को मेरे
ग़ुरूर अपना समझ कर जिस पे अब तक मर रही थी मैं।

वहाँ अब कोसते हैं लोग सब तक़दीर को मेरी,
जहाँ अपनी मोहब्बत की मिसालें हर ज़बाँ पर थी।
किया बदनाम उसने आज रिश्ते को मोहब्बत के,
वही रिश्ता जो कल तक पाक था और ख़ूबसूरत भी।

सरस्वती दत्ता
(स्नातक, सेमेस्टर 4)

अंतिम मिलन

क्या देख रही हो, प्रिये?
क्या यही वो मिलन है,
जो हमने साथ मिलकर सोचा था?

क्या सोच रही हो, प्रिये?
किसकी यादों में खोई हो, प्रिये?
क्या यही वो मिलन है,
जो हमने अपने सपनों में बुना था?

तुम्हारे नयन किसकी तलाश में हैं, प्रिये?
क्या यही वह मिलन है,
जिसे हमने साथ संजोया था?

यही तो वो मंज़र है,
जिसकी हमने साथ-साथ कसमें खाई थीं —
कि मिलकर कभी न बिछड़ेंगे...

तो क्या यह हमारा अंतिम मिलन है, प्रिये?

लक्ष्मण गोराई
(स्नातकोत्तर, सेमेस्टर 1)

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय।
टूटे से फिर न मिले, मिले गाँठ परिजाय॥

- रहीम

तुलसी के राम

अयोध्या था जिनका धाम,
मर्यादा पुरुषोत्तम वे श्रीराम।
पिता दशरथ, कौशल्या माता,
लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न भ्राता।

चारों भाइयों में थे ज्येष्ठ,
अपने कुल को बनाया श्रेष्ठ।
कैकई को भी माता बतलाते,
हर जीव को हृदय में बसाते।

पितु आज्ञा से निकले वन,
राज त्याग तपस्वी बन।
खुशी-खुशी निकले रघुनाथ,
सिया-लखन भी हो गए साथ।

पाषाण अहिल्या को चरण-रज से तारा,
मल्लाह निवेदन को नहीं नकारा।
गुरु विश्वामित्र का मान आदेश,
आश्रम में ठहरे स्वयं नरेश।

दुष्ट ताड़का को बाण से मारा,
ऋषि मारीच को भी संहारा।
रावण जानता था षड्यंत्र कला,
वन में उसने सीता को छला।

क्रोधित हुए देख सीता हरण,
चेत जा अब तू, दुष्ट रावण।
वानर-सेना के साथ मिलकर,
किया आक्रमण लंका पर।

यह देख किया रावण ने अट्टहास,
पर रघुवर को था सत्य पर विश्वास।
अंततः आया वह भी क्षण,
जब हुआ रावण का मर्दन।

यही है इस जग की रीत —
असत्य पर होती सत्य की जीत।
टूट जाता है अहंकार,
राम-नाम है मोक्ष का द्वार।

पर आज कौन मानता है,
श्रीराम का सुंदर संदेश?
आज तो उनके नाम पर
सुलग रहा अपना यह देश।

शालिनी कुमारी
(स्नातकोत्तर, सेमेस्टर 2)

याद आती हो तुम

माँ,
जब मैं जीवन की इस यात्रा में
बढ़ रही हूँ आगे अकेली,
हर कदम पर याद आती हो तुम —
याद आती हैं तुम्हारी वो बातें,
जब मेरे लड़खड़ाने पर डांटती थीं तुम।

सालों बीत चुके हैं तुम्हें गए हुए,
फिर भी लगता है — मुझे देख रही हो तुम।
इस सीढ़ीनुमा ज़िंदगी के उतार-चढ़ाव में,
हर मोड़ पर याद आती हो तुम।

कभी-कभी खुद से ही बातें करती हूँ,
सोचती हूँ — शायद सुन रही हो तुम।
छोड़कर चली गई हो मुझे और अब शांत हो,
इतनी कठोर कैसे हो गई हो तुम?

इस बड़ी सी दुनिया में
अकेली पड़ गई हूँ मैं,
आकर संभाल लो न माँ,
वापस आ जाओ न।
जीवन की इस कठिन यात्रा में,
हर कदम पर याद आती हो तुम।

रिपु कुमारी
(स्नातकोत्तर, सेमेस्टर 2)

हर दिन एक नई चुनौती

हर दिन एक नई चुनौती, हर कदम साहस भरा।

उस चुनौती का सामना करने, घर से निकल पड़ो।
इतिहास के पन्नों में अपना नाम लिखते चलो।
मन को डर घेर रहा है, हिम्मत से कदम बढ़ाते जाओ।
हर इंसान में हुनर छिपा है, तुम उसे निखारते जाओ।
हर दिन एक नई चुनौती, हर कदम साहस भरा।

मन की आवाज़ को नए तरीके से जगाते जाओ।
नया उत्साह, नई उमंग अपने अंदर लाते जाओ।
बिना तैयारी कुछ भी संभव नहीं है,
एकांत में बैठ सोचते रहो,
जीत हो चाहे हार हो, तुम हमेशा मुस्कुराते रहो।
हर दिन एक नई चुनौती, हर दिन एक इम्तिहान है।

मुश्किलों से भरी राहों में कोशिशों को ज़िंदा रखो,
हार जाओ चाहे ज़िंदगी में सब कुछ,
मगर फिर से जीतने की उम्मीदों को ज़िंदा रखो।
हर दिन एक नई चुनौती, हर कदम साहस भरा।

रिमी कुमारी
(स्नातकोत्तर, सेमेस्टर 2)

रैदास प्रेम नहिं छिप सकई, लाख छिपाए कोय।
प्रेम न मुख खोलै कभऊँ, नैन देत हैं रोय॥

- रैदास

अदृश्य तपस्या

दिन भर की व्यस्तता,
फेरी वालों की आवाज़ें और शोरगुल।
रात ढलते ही सब कुछ शांत हो जाता है —
अनजाने नामों की भीड़ में,
फेरी वाले अपनी थकी हुई आत्मा को सुला देते हैं।

दूर से मैं देखती हूँ,
दूर से उनके दर्द को महसूस करती हूँ।
दूर से प्रश्न पूछती हूँ —
दूर से समाज के धर्मशास्त्र को निहारती हूँ।
मैं मृत शरीर के चारों ओर
रोशनी के भीतर छिपे अंधकार को महसूस करती हूँ।
अदृश्य रूप से देखती हूँ —
कि कौन किसकी खोज में है!

"निर्माण प्रक्रिया का कालान्तर" —
क्या कालान्तर स्थिर होता है?
क्यों 'त्याग' और 'कालान्तर' एक साथ नहीं हो सकते?
शायद...!

श्रम की दुनिया में निहित वह सत्य,
जो विकास की खोज में कहीं दफन है —
मैं, अदृश्य, तपस्या करती हूँ
उन फेरीवालों की थकी आत्माओं के
अनकहे संघर्षों के लिए।

तृप्ति रानी बेड़ा
(स्नातकोत्तर, सेमेस्टर 2)

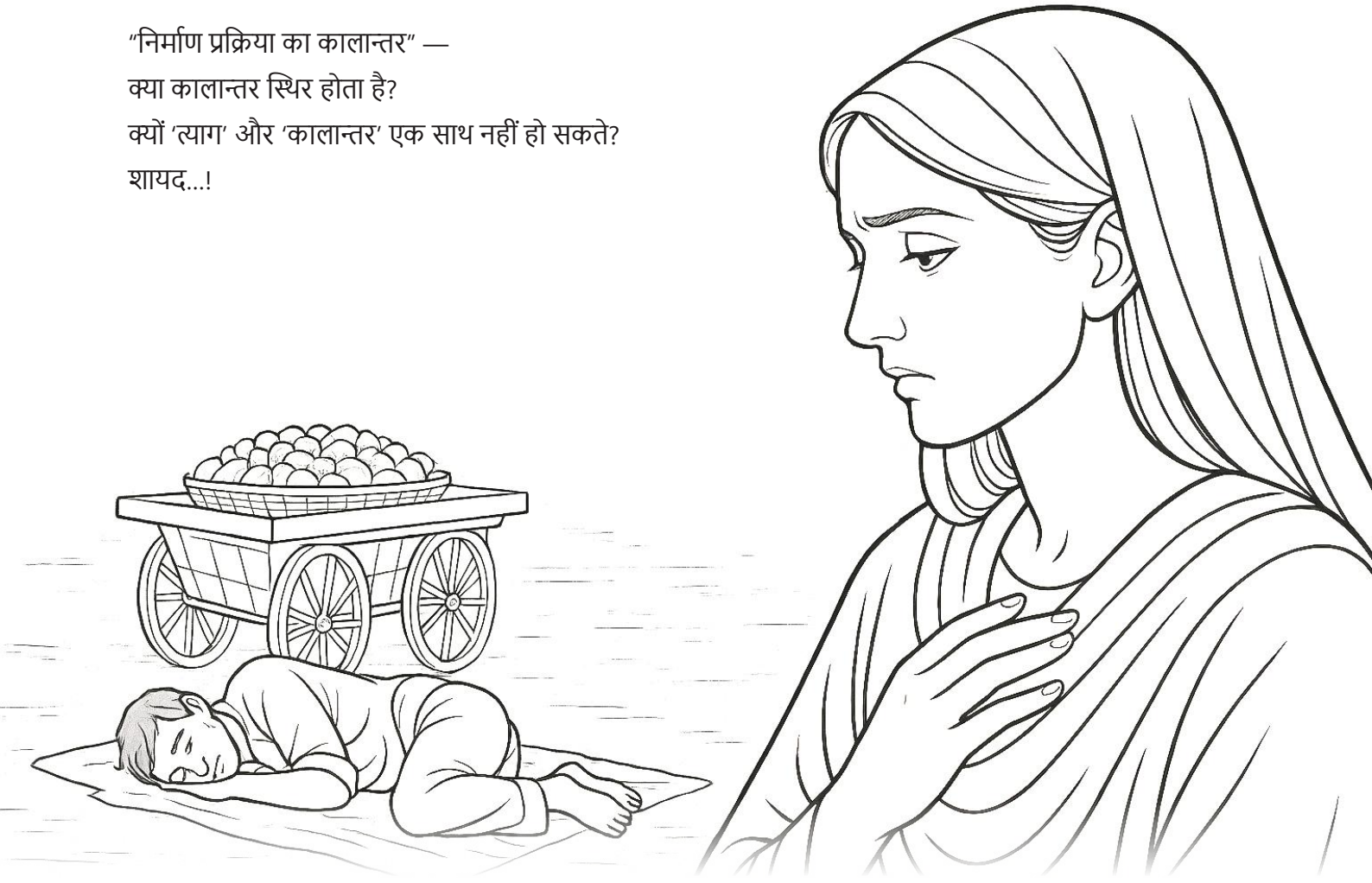

सात संदूक़ों में भर कर दफ़्न कर दो नफ़रतें
आज इंसाँ को मोहब्बत की ज़रूरत है बहुत

- बशीर बद्र

हमारी त्रैमासिक दीवार पत्रिका 'युवमानस' के अन्य अंकों की डिजिटल प्रति प्राप्त करने हेतु

क्लिक करें

या स्कैन करें